''महाभारत के अनुसार एक उचित एवं न्यायपूर्ण (शुभ) शासन की संकल्पना''

*डॉ. पंकज बासोतिया

लेव टोलस्टोय एवं महात्मा गांधी, उन आधुनिक चितंको मे से प्रमुख हैं, जिन्होने आधुनिक राज्य की संरचना एवं स्वरूप की तीव्र आलोचना की है। दोनो के ही अनुसार आधुनिक राज्य के मूल में ही, भय, अमर्यादित बल एवं हिंसा का विचार अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। गांधी एवं टोलस्टाय की इस तीव्र आलोचना के कारण एक बार फिर से एक राजनीतिक संस्था के रूप मे राज्य की उत्पत्ति के आधार एवं औचित्य के प्रश्न को राजनीतिक चिंतन के केन्द्र मे ला दिया है।

यदि हम वर्तमान Neo-liberal संदर्भ मे, जिसे हिन्दी मे नव–उदारवादी संदर्भ कहा जाता है, शुभ या अच्छे शासन की संकल्पना पर विचार करना चाहते हैं तो सबसे पहले हमें इस पर विचार करना होगा कि good जिसे हिन्दी मे शुभ या अच्छे के रूपये अनुदित किया जा सकता है, उससे हमारा वास्तविक तात्पर्य क्या है? शुभ की हमारी कोई भी परिभाषा धारणा या लक्षण, क्या समय एवं स्थान (देश/काल–space/time) के सापेक्ष होगी अथवा वह कोई देश–काल निरपेक्ष एवं परिस्थिति एवं संदर्भ निरपेक्ष अवधारणा भी हो सकती है?

नीति दर्शन मे प्लेटो के समय से लेकर, आधुनिक काल मे G.E. Moore & R.M. Hare तक पिछले 2500 सालों से 'शुभ' पर इतना विचार किया जा चुका है, जितना शायद ही किसी अन्य प्रत्यय पर किया गया हो, प्लेटो के अनुसार वास्तविक शुभ, एक ऐसा अमूर्त प्रत्यय है, जिस पर अन्य सभी न केवल अपनी शुभता वरन् अपने अस्तित्व के लिए निर्भर हैं!

ग्रीन एवं हेगेल के अनुसार, किसी भी कर्म की शुभता न केवल उसके परिणाम वरन् उस कर्म के पीछे प्रेरणा के रूप में रहने वाले संकल्प की शुभता पर निर्भर करती है!

19वीं शताब्दी के सबसे महत्वपूर्ण नीति दार्शनिकों मे से एक G.E. Moore के अनुसार, शुभ एक सरल नैतिक संप्रत्यय है अतः उसकी ओर संकेत तो किया जा सकता है, किन्तु उसकी परिभाषा दिया जाना संभव नही है। शुभ उसी प्रकार से अपरिभाष्य है जैसे– पीला रंग, ! संकेत द्वारा हम यह तो बता सकते हैं कि पीला रंग कौनसा है, किन्तु एक सरल गुण होने के कारण भाषा मे इसकी परिभाषा दिया जाना संभव नही है।

भले ही शुभ के स्वरूप के संबंध में विभिन्न दार्शनिकों के बीच मतभेद हों किन्तु इस पर लगभग सभी दार्शनिक एक मत है कि शुभ का संप्रत्यय, अभिन्न रूप से उचित–अनुचित एवं न्याय के संप्रत्यय से जुड़ा है। विशेषक राजनीतिक चिंतन में, किसी भी संस्था के स्वरूप एवं कार्यप्रणाली के अच्छे या बुरे, शुभया अशुभ होने का विचार, न्याय के विचार एवं उचित/अनुचित के विचार के बिना संभव नहीं है। महाभारत मे भी राज्य अथवा शासन की कार्यप्रणाली के प्रश्न को न्याय एवं उचित/अनुचित के विचार से जोड़ा गया है। इस जुड़ाव का सबसे पहला और महत्वपूर्ण सोपान है–धर्म!

Sec.1

धर्म–राज्य/शासन के आधार के रूप में

महाभारत के शान्ति पर्व में राजधर्म को सब धर्मो का मूल कहा गया है। विभिन्न वर्ण एवं आश्रम धर्मों का मूल भी राजधर्म ही है। धर्म जैसे गूढ़ विषय को विभिन्न उपाख्यानों, संवादो के माध्यम से, विभिन्न रूपों मे अभिव्यक्त किया गया है, जैसे– अनेक प्रकार की गीता, संवाद, उपाख्यान, प्रशस्तिवाचन, निन्दा, स्तुति, लक्षणावली आदि।

Sec.2

धर्म की व्युत्पत्ति एवं विभिन्न अर्थ

1. कर्तव्य 2. कानून 3. धार्मिक/नैतिक गुण 4. पुरूषार्थों में एक
5. शास्त्र विहित आचरण, वैदिक कर्म 6. औचित्य 7. सहजवृत्ति/स्वभाव
8. शुभाशुभ/पुण्य 9. अमृत 10. सम्प्रदाय/ Religion

धर्म शब्द की व्युत्ति घृ (धारणे) धातु से मन् प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होती है, जिसका अभिप्राय है–

घ्रियते लोको अनेन, धारयति लोकं वा

जो लोक को धारण करता है।

यहां नैतिक धर्म एवं तत्वदर्शन, दोनो को परस्पर संबद्ध माना गया है। धर्म न केवल शाश्वत् एवं सनातन है वरन् इसका एक पक्ष–देशकाल अनुगामी, देशकाल सापेक्ष भी है।

(शान्ति पर्व 37/8, 297/16)

शान्ति पर्व के अनुसार राजधर्म का संबंध केवल राजा से नहीं वरन् राष्ट्र, समाज और व्यक्ति से भी है। धर्म केवल व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक ही नहीं है, वरन् मनुष्य जीवन के परम लक्ष्य, अभ्युदय या निःश्रेयस की प्राप्ति भी इसी से होती है। इसीलिए अनेक उपाख्यानों द्वारा धर्म, सदाचार आदि विविध मूल्यों की व्याख्या एवं अवधारणा की गई है।

भीष्म के अनुसार, राजा को नाना प्रकार के मनुष्यों के सानिध्य द्वारा विभिन्न प्रकार की बुद्धियों को सीखना चाहिए और एक ही शाखा वाले धर्म को लेकर बैठे नही रहना चाहिए। भीष्म ने कहा, ''हमने सुना है कि केवल वचन अथवा बुद्धि के द्वारा ही धर्म का निश्चय नही होता, बल्कि शास्त्र–वचन और तर्क दोनो के समुच्चय के द्वारा उसका निर्णय होता है, यही वृहस्पति का मत है, जिसे स्वयं इन्द्र ने बताया है।''

महाभारत के अनुसार, जिस प्रकार एक उदात्त जीवन जीने के लिए व्यक्तिगत अनुशासन की आवश्यकता है, उसी प्रकार एक श्रेष्ठ सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण के लिए, सामाजिक एवं राजनीतिक संबंधो एवं संस्थाओ का नियमन एवं अनुशासन भी अनिवार्य है। महाभारतकार इस नियमन के आधार के रूप मे धर्म को स्वीकार करते हुए धर्म की परिभाषा देने के स्थान पर, धर्म के लक्षणों का वर्णन करते है। ऐसे लक्षण जो स्पष्ट, सुसंगत एवं सार्वभौमिक है। धर्म, जिसके अनेक संभव अर्थो में से सम्प्रदाय या Religion केवल एक संभव अर्थ है, न कि एकमात्र संभव अर्थ, यही महाभारत के अनुसार, सारे कानून एवं शासन की वास्तविक आधारशिला है। यहां इसका तात्पर्य वैदिक ऋत से अर्थात न्याय, सत्य एवं शुभ से है, न कि Religion या सम्प्रदायिक नियमों से।

वेद में धर्म एवं ऋत का अर्थ है, सत्य– वे सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक नियम जिस पर और जिनके लिए समस्त भौतिक एवं प्राकृतिक जगत् कार्यरत एवं संचालित है। दिन और रात, सर्दी, गर्मी और बरसात, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र, मास एवं संवत्सर सभी एक सुव्यवस्थित नियम के आधार पर संचालित एवं व्यवस्थित होते है, न कि आकस्मिक घटनाओं के रूप में। ये सभी संयोगिक न होकर एक गहरे कार्य–कारण नियम एवं क्रम से बंधे हुए है। यह ऋत का नियम न केवल प्राकृतिक घटनाओं के संबंध मे कार्यरत है वरन् मानवीय जगत् एवं संबंधों का नियमन भी इसी के द्वारा होता है। शुभ कर्म का फल शुभ एवं अशुभ कर्म का फल अशुभ होता है। किए गए कर्म का फल कभी–नष्ट नही होता (कृत–प्रणाश), एवं न किए गए कर्म का फल कभी कर्ता के जीवन में प्रवेश करता (अकृत–अभ्युपगम)।

अतः सामाजिक या राजनीतिक– संस्थाओं का, विशेषकर शासन एवं कानून का कर्तव्य ऋत के इसी नियम के अनुसार, शासन एवं व्यवस्था को ढालना है, न कि इस नियम के विपरीत किन्ही नए नियमों का सृजन और फिर उनका अनुपालन। महत्वपूर्ण यह है कि इस नियम को व्यापक मानवीय संदर्भ मे समझ कर उसे व्यावहारिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन मे ठीक प्रकार से उतारा जा सके। इसी में न केवल मानवीय जीवन वरन् शासन, कानून एवं राजनीति की सफलता एवं सिद्धि है।

Sec.3

शासन के विशेष संदर्भ में धर्म के लक्षण

1. प्रभव 2. धारणा 3. अहिंसा

प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्।

यः स्यात्प्रभवसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।। (शान्ति पर्व, 109, 10–12)

सभी प्राणियों (भूतमात्र) के प्रभव के (कल्याण) लिए ही धर्म का प्रवचन किया जाता है। अतः जो भी उनके कल्याण/प्रभव से संयुक्त हो, वही धर्म है, यही निश्चय है।

धारणाद् धर्ममित्याहुधर्मेण विधृताः प्रजाः।

य स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चय।। (शान्ति पर्व, 109, 11)

धर्म को धारणा के लिए ही कहा जाता है। जो प्रजा का धारण करे–वही धर्म है। अतः जो धारणा से संयुक्त हो–वही धर्म है–यही निश्चय है।

अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्।

यः स्यादहिंसासम्पृक्तः स धर्म इति निश्चयः।। (शान्ति पर्व, 109, 12)

प्राणीमात्र में अहिंसा के लिए ही धर्म का प्रवचन किया गया है, जो अहिंसा से संयुक्त हो वही धर्म है। यही निश्चय है।

अतः प्रभव, धारणा एवं अहिंसा का जो विपरीत है, वही अधर्म है जैसे– अभाव, गरीबी, भुख, अलग किया जाना चोट पहुंचाना या हिंसा आदि। अतः चाहे हम ''न्याय'' ''कानून'' या ''good governence'' को किसी भी रूप मे व्याख्यायित करें, उनमे प्रभव, धारणा एवं अहिंसा का गुण होना आवश्यक है। जिसका मुख्य आधार है–धर्म। इनके विपरीत 'अन्याय' ''तानाशाही''या अराजकता है जो कि अधर्म के लक्षण है एवं स्व एवं पर का विनाश करने वाले है।

यहां एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि महाभारत के अनुसार राजनीतिक सिंद्धान्त के मूल तत्व क्या है? जिसका कि शासन व कानून एक अनिवार्य हिस्सा है? प्रारंभ मे व्यक्ति एक इकाई के रूप मे उपस्थित है, जो कि एक जटिल सामाजिक संबंधो की प्रक्रिया मे निबद्ध होता है। इन सामाजिक एवं राजनीतिक संबंधो के संचालन एवं नियमन की प्रक्रिया क्या है? किसके द्वारा यह प्रक्रिया संचालित एवं नियमित की जानी चाहिए? यदि व्यक्ति एवं समाज या व्यक्ति एवं राज्य के बीच परस्पर हित को लेकर कोई संघर्ष उत्पन्न होता है तो फिर निर्णय का आधार क्या होगा और निर्णय का अधिकार किसे है?

उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर एक समुचित ''कानून के सिद्धान्त'' (Concept of Law) द्वारा ही दिया जा सकता है।

इस संदर्भ मे एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि कानून मनुष्य को दिव्य नियमों के रूप में, ऐसे दिव्य नियम जिनमें परिवर्तन संभव नही है, ईश्वर के द्वारा प्रदत्त है अथवा वह समाज की भौतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों द्वारा उत्पन्न है, जिसमें यथा समय आवश्यकता के अनुसार, परिस्थितियों के अनुसार, परिवर्तन किया जाना संभव है। चूंकि कानून का प्रश्न, ''शक्ति एवं अधिकार'' (power) के साथ अभिन्नतः जुड़ा है, अतः यह शक्ति की अवधारणा उसके वाजिब स्रोत, उसके प्रयोग की शर्ते एवं सीमाओ एवं उसके उचित विरोध के प्रश्नों के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा है।

यहां इस शक्ति के क्रियान्वयन हेतु आवश्यक संस्थाओं के सृजन एवं नियमन का प्रश्न भी उपस्थित होता है। उनके बीच परस्पर संबंध किस प्रकार का है? क्या उसे साधन–साध्य की कोटियो में रखा जा सकता है?

इस प्रकार, महाभारत के राजनीतिक चिंतन के केन्द्र मे ''power या बल'' का प्रश्न है? उसके स्रोत एवं उद्देश्य और सीमा, तथा अति होने पर किस प्रकार वह शोषण या हिंसा मे परिवर्तित होकर अधर्म मे भी बदल सकता है।

Sec. 4

शासन का उद्देश्य–दण्ड़

जहां धर्म के संदर्भ मे महाभारत मे प्राकृतिक नियमो की अनुपालना को ही ऋत के रूप मे एक आदर्श के रूप मे रखा है, वही दण्ड़ के संदर्भ मे प्राकृतिक अवस्था का चित्रण एक आदर्श के रूप मे न होकर आदर्श के विपरीत के रूप मे है।

यहां प्राकृतिक स्थिति ''अराजकता एवं अव्यवस्था'' की स्थिति है। (anarcy and chaos), एक ऐसी स्थिति जहां बलवान, निर्बल का भक्षण करता है एवं उस भक्षण के द्वारा ही पोषण को प्राप्त करता है। शान्ति पर्व के राजधर्म पर्व के 15 वें अध्याय के अनुसार (15.20 से 15.22 तक), प्रकृति में सभी प्रबल जीव, दुर्बल जीव के भक्षण द्वारा ही जीवन निर्वाह करते है।

नेवला–चूहे को खा जाता है, नेवले को बिलाव, बिलाव को कुत्ता और कुत्ते को चीता मार कर खा जाता है, परन्तु इन सबको मनुष्य मारकर खा जाता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे इसे ही मात्स्य न्याय कहा गया है जिसके अनुसार बड़ी मछली, छोटी मछली को खा जाती है।

यद्यपि प्राणी जगत में यही सामान्य व्यवहार है किन्तु मानवीय जगत मे विवेक या प्रज्ञा या नैतिकता का मांग को देखते हुए इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इसीलिए राज्य के रूप में दण्ड के हस्तक्षेप की आवश्यकता है कि सबल से निर्बल की रक्षा की जा सके। यही महाभारत के अनुसार राज्य या दण्ड का परम् उद्देश्य है।

शान्ति पर्व 15.10 के अनुसार–

असम्मोहाय मर्त्यानामर्थसंरक्षणाय च।

मर्यादा स्थापिता लोके दण्डसंज्ञा विशाम्पतें।। शान्ति पर्व 15.10।।

दण्ड उसे कहा जाता है, जो मर्त्यो का सम्मोहन से दूर रखे, अर्थ का संरक्षण करे एवं लोक में मर्यादा की स्थापना करे।

दण्डश्चेन्न भवेल्लोके विनश्येयुरिमाः प्रजाः।

जले मत्स्यासनिवाभक्षयन् दुर्बलान् बलवत्तराः।। शान्ति पर्व 15.30

यदि संसार मे दण्ड न होता तो प्रजा अवश्य ही उसी प्रकार नष्ट हो जाती जिस प्रकार बडी मछली, छोटी मछली को निगल जाती है, उसी प्रकार प्रबल, निर्बलो का भक्षण कर जाते।

राजा चेन्नभवेल्लोके पृथिव्यां दण्डधारकः।

जले मत्स्यानिवाभक्ष्यन् दुर्बल बलवत्तराः।। शान्ति पर्व 67.16

यदि संसार मे दण्ड न होता तो मनुष्य एक दूसरे को परस्पर नष्ट कर देते, दण्ड के, भय के कारण ही लोग परस्पर एक दूसरे को नही मारते।

राजमूलो महाप्राज्ञ धर्मो लोकस्य लक्ष्यते।

प्रजा राजभयादेव न खादन्ति परस्परम्।। शान्ति पर्व 68.8

विश्व मे दिखाई देने वाली व्यवस्था का मूल राज्य ही है। राज्य/शासन के भय से ही प्रजा परस्पर एक–दूसरे का नही खाते है।

***सह–आचार्य**
दर्शनशास्त्र विभाग
राजीव गांधी राजकीय महाविद्यालय,
शिमला (हिमाचल प्रदेश)